(देश देशान्तरों में प्रचारित, सबसे सस्ता, उच्च कोटि का आध्यात्मिक—पत्र)

सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई ॥

सम्पादक—श्रीराम शर्मा।

वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ५ | मथुरा, १ फरवरी सन् १९४४ ई० | अङ्क २

आध्यात्म पथ के पथिको ! अपरिग्रही बनो !!

मन से हर एक को सदैव अपरिग्रही होना चाहिए। आदर्श यही सामने रहना चाहिए कि सच्ची जरूरतें पूरी करने के लिए ही कमावें, जोड़ने, जमा करने या ऐश उड़ाने के लिए नहीं। यदि गरीब आदमी लखपती बनने के मनसुबे बांधता है तो वह परिग्रही है। धन वैभव के बारे में यही आदर्श निश्चित किया होना चाहिए कि सच्ची जरूरतों की पूर्ति के लिए कमावेंगे, उतनी ही इच्छा करेंगे, उससे अधिक संग्रह न करेंगे। धनको जीवन का उद्देश्य नहीं वरन् एक साधन बनाना चाहिए। "आत्मोन्नति और परमार्थ" जीवनोद्देश्य तो यही होना चाहिए। जीवन धारण करने योग्य पैसा कमाने के अतिरिक्त शेष समय इन्हीं कार्यों में लगाना चाहिए। पैसे की आज जो सर्वभक्षी तृष्णा हर एक के मन में दावानल की तरह धधक रही है यह सर्वथा त्याज्य है। सादगी और अपरिग्रह में सच्चा आनन्द है। मनुष्य उतना ही आनन्दित रह सकता है जितना अपरिग्रही होगा। परिग्रही के शिर पर तो अशान्ति और अनीति सवार रहती है। इसी मर्म को समझते हुए योग शास्त्र के आचार्यों ने आध्यात्म पथ के पथिक को अपरिग्रही बनने का कठोर आदेश किया है।
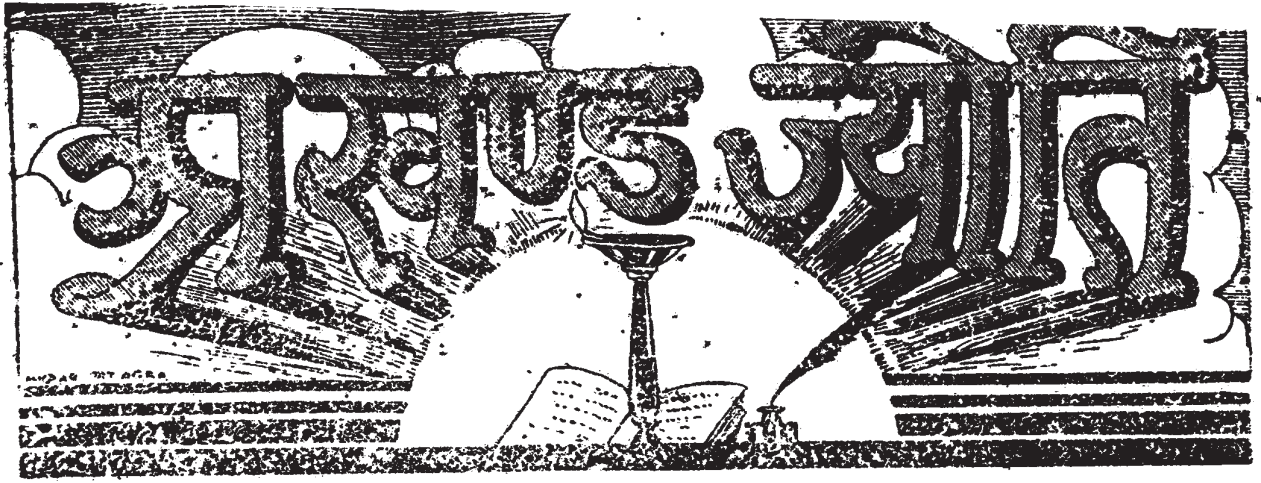
सुधा बीज बोने से पहिले, काल कूट पीना होगा।
पहिन मौत का मुकुट विश्व-हित, मानव को जीना होगा ॥

वर्ष ५ | मथुरा, १ फरवरी सन् १९४४ ई० | अङ्क २

* अभियाचन *

[रचयिता—श्री० जनार्दन पांडेय शास्त्री]

हे भगवान! महान बनूं मैं।

दुःख आकर मुझ से टकरावें।
गिर कर चूर चूर हो जावें॥
अविचल अटल रहूं दृढ़ होकर—
प्रभु ऐसा चट्टान बनूं मैं।
हे भगवान! महान बनूं मैं ॥१॥

उन्नत हो नभ में लहराऊं।
मानव के जग में फहराऊं॥
शुचिता अरु मानवता का—
ऐसा अमिट निशान बनूं मैं॥
हे भगवान! महान बनूं मैं ॥२॥

जगमग ज्योति-अखण्ड जगा लूं।
भूले पथ के पथिक बुला लूं॥
हो जाऊं मग-दर्शक जग का—
ऋषियों की सन्तान बनूं मैं।
हे भगवान! महान बनूं मैं ॥३॥

मैं सत्य सुधा का पान करूं।
मैं प्रेमी बन सम्मान करूं॥
मैं न्यायी न्याय विधान करूं—
फिर जीवन का अभिमान बनूं मैं।
हे भगवान! महान बनूं मैं ॥४॥

तेरी करुणा का ध्यान करूं।
प्रतिक्षण तेरा आह्वान करूं॥
हो जाऊं तन्मय तुझ में-तब—
तेरे कर का वरदान बनूं मैं।
हे भगवान! महान बनूं मैं ॥५॥

अखण्ड-ज्योति

र स्वर्गसे भूमंडल पर, सत् की अमर ज्योति आती है
ग़ु बजाती सत्य-प्रेम की, सुमधुर न्याय गान गाती है

मथुरा १ फरवरी सन् १९४४ ई०

आत्मशक्ति का उचित उपयोग

एकाग्रता में दिव्य शक्तियों के भण्डार भरे हुए । सांसारिक जीवन में मनकी शक्ति से बड़े बड़े अद्भुत कर्मों को मनुष्य पूरा करता है। इसी मनः शक्ति को जब बाहर से समेट कर अन्तर्मुखी किया जाता है और असाधारण कठिन परिश्रम द्वारा इसको सुव्यस्थित रूप से आत्म-साधना में लगाया जाता है तो और भी अद्भुत, आश्चर्य-जनक, परिणाम उपस्थित होते हैं, जिन्हें ऋद्धि सिद्धि के नाम से पुकारते हैं। निसन्देह आध्यात्मिक साधना के फल स्वरूप कुछ ऐसी विशेष योग्यतायें प्राप्त होती हैं जो सर्व साधारण में नहीं देखी जातीं। यदि इस प्रकार का विशेष लाभ न होता तो मनुष्य प्राणी जो स्वभावतः वैभव और आनन्द की तलाश करता रहता है । इन्द्रिय भोग को त्याग कर योग की कठोर साधानाओं की ओर आकर्षित न होता। रूखी, नीरस, कठोर, अरुचिकर कष्ट साध्य, साधनायें करने को कोई कदापि तैयार न होता यदि उसके फल स्वरूप कोई ऊंचे दर्जे की वस्तु प्राप्त न होती।

मूर्ख, अपढ़, नशेबाज; हरामी और अधपगले भिखमंगों के लिए यह कहा जासकता है कि यह लोग बिना मेहनत पेट भरने के लिए जटा रखाये फिरते हैं। परन्तु सब के लिए ऐसा नहीं कहा जासकता । विद्या, वैभव, बुद्धि, प्रतिभा और योग्यताओं से सम्पन्न व्यक्ति जब विवेक पूर्वक सांसारिक भोग बिलास से बिरत होकर आत्म-साधना में प्रवृत्त होते देखे जाते हैं तो उसमें कुछ विशेष लाभ होना ही साबित होता है। प्राचीन काल में जितने भी तपस्वी हुए हैं और आज भी जो सच्चे तपस्वी हैं वे विवेक प्रेरित होकर इस मार्ग में आते हैं। उनकी व्यापार बुद्धि वे गंभीरता पूर्वक निर्णय किया है कि भोग की अपेक्षा आत्म साधना में अधिक लाभ है। लाभ का लोभ ही उन्हें स्थूल वस्तुओं में रस लेने की अपेक्षा सूक्ष्म संपदाओं का संचय करने की ओर ले जाता है।

जो लोग सच्ची लगन और निष्ठा के साथ आध्यात्मिक साधना में प्रवृत्त हैं उनका उत्पादन कार्य अच्छी फसल उत्पन्न करता है। उसमें एक खास तौर की शक्ति बढ़ती है जिसे आत्मबल कहते हैं। यह बल सांसारिक अन्य बातों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है । प्राचीन काल में राजा विश्वामित्र की समस्त सेना और संपदा, तपस्वी वशिष्ठ के आत्मबल के सामने पराजित होगई तो "धिक् बलं क्षत्रिय बलं; ब्रह्म तेजो बलं बलम् ।" कहते हुए विश्वामित्र राज पाट छोड़ कर आत्म साधना के मार्ग पर चलपड़े। राजा की अपेक्षा ऋषि को उन्होंने अधिक बलवान् पाया। सांसारिक बल की अपेक्षा आत्मबल को उन्होंने महान अनुभव किया। छोटी चीज़ को छोड़कर लोग बड़ी की ओर बढ़ते हैं। राज त्याग कर विश्वामित्र का योगी होना इसका ज्वलंत प्रमाण है। गौतम बुद्ध का चरित्र भी इसी की पुष्टि करता है। जो आत्म साधना में लीन हैं वे ऊँचे दर्जे के व्यापारी हैं। छोटा रोजगार छोड़ करके बड़ी कमाई में लगे हुए

हैं। यह कमाई पूर्णतः प्रत्यक्ष हैं यदि वह लाभ सच्चा और ऊंचा न होता तो एक भी विवेकवान व्यक्ति उस झंझट भरे, कठिन मार्ग में प्रवृत न होता।

अणिमा लघिमा आदि सिद्धियों का पातञ्जलि योग दर्शन में वर्णन है। तान्त्रिक साधनाओं द्वारा "मारण"-आत्मविद्युत के प्रहार से किसी को मार डालना, "मोहन"-बुद्धि का मोहित करके इच्छानुसार कार्य कराना, "उच्चाटन"-किसी स्थान कार्य या व्यक्ति से मन उचटा देना द्वेष करादेना, "बशीकरण"-वश में कर लेना आज्ञानुवर्ती बना लेना, "आकर्षण"-किसी को आकर्षित करना, "स्तम्भन"-किसी कार्य की अधूरी अवस्था में छुड़ा देना, रोक देना, जड़ता उत्पन्न कर देना, आदि भयंकर सफलतायें मिलती है। देवी देवता तथा प्रेत पिशाचों की सहायता भी किन्हीं को प्राप्त होती है। इन सब योग्यताओं द्वारा दूसरे व्यक्ति को भौतिक वस्तुओं का हानि लाभ भी पहुंचाया जाता है। अपनी योग्यताओं का प्रदर्शन करके चमत्कार दिखाने, पूजा और कीर्ति भी प्राप्त की जाती है। बदले में धन और भोग लिए जाते हैं। यह सब होता है या होसकता है परन्तु याद रखना चाहिए कि यह निषिद्ध मार्ग है। इस क्षण कुछ लाभ भले ही मालूम पड़े पर अन्त में इसका परिणाम अत्यन्त घातक, भयंकर और करने कराने वाले दोनों के लिए दुख दायक होता है। इस खतरे से हर एक आत्म साधक को सावधान रहना चाहिए।

विगत अंक में मेस्मरेजम की साधना का एक आरंभिक अंग प्रकाशित किया गया है। सर्व साधारण के संमुख जितना प्रकट किया जासकता है उतना ही उसमें छप गया है। वह आरंभिक अभ्यास है। विभिन्न मार्गों से साधक गहरी आत्म साधना में जब प्रवेश करता है तो उसे असाधारण लाभ और बलों का अपने अन्दर बोध होता है उसकी योग्ताएँ दिन दिन निरखती आती है। खतरे का यही समय है। यदि उन शक्तियों का उपयोग ठीक न हुआ तो वैसा ही अनिष्ट उत्पन्न होता है जैसा कि मूर्ख बालक दियासलाई की डिब्बी हाथ में लेकर भयंकर अग्निकाण्ड उपस्थित कर सकता है। योग शास्त्र में स्थान स्थान पर ऋषि सिद्धियां के प्रलोभन में न फंसने का कठोर आदेश है। कारण यह है कि यदि साधक चमत्कार दिखाने में लग गया तो वाहवाही के लोभ तथा शक्तिमत्ता के अभिमान में नष्ट भ्रष्ट होकर नष्ट हो जायगा।

ईश्वर की सृष्टि में सब कार्य सुव्यवस्था पूर्वक चल रहे हैं। कर्म का चक्र ठीक प्रकार से चल रहा है। बोओ और काटो, की अविचल नीति इस सृष्टि से संचालित है। यदि उसमें विघ्न उपस्थित किया जाय तो यह ईश्वरीय शासन में विद्रोह है। 'परिश्रम करो और धन कमाओ'। "जितना कमाओ उससे कम खर्च करो"। इन दो सत्य सिद्धों पर जो आरूढ़ है उसे धन के अभाव का कष्ट नहीं हो सकता। किन्तु बहुत से लोग चाहते हैं कि परिश्रम न हो और लाभ बहुत अधिक हो, खर्च मनमाने बढ़ावें और उनको पूरा करने के लिए अधाधुन्ध रुपया पावें। ऐसे लोग जुआ, दड़ा, सट्टा, फीचर, लाटरी, गढ़ा धन, आदि की फिक्र में रहते हैं और ऐसी ही इच्छाओं से प्रेरित होकर योगियों के आस-पास चक्कर काटते हैं। उन्हें तरह-तरह से फुसला कर अपना मतलब गांठना चाहते हैं। यदि कोई मूर्ख साधक इनके बहकावे में आकर अपनी आत्म शक्ति इधर लगाता है तो वह भारी अनर्थ करता है। बिना परिश्रम के आया हुआ धन अनाचार, पाप और पतन का ही कारण बनेगा। बीस उंगलियों की कमाई से ही मनुष्य का चरित्र ठीक रह सकता है। यदि मुफ्त का माल मिले तो उसका चरित्र और प्रयत्न गिर जायगा। जिस योगी ने किसी को इस प्रकार धन दिलाया उसने उसको नीचे गिराया उसके साथ में भारी पापपूर्ण अनाचार किया।

आरोग्य, धन, पद, कीर्ति, विद्या, आदि संपदायें मनुष्य अपने बाहुबल से प्राप्त कर सकता है। भौतिक संपदाओं के बढ़ाने में आत्म शक्ति जैसे उच्च तत्व का व्यय न करना चाहिए। किसी को आधपाव चने दिलाने हों तो उसको दो पैसे देदेना पर्याप्त है रक्त दान देने की क्या जरूरत? जिसके प्राणों पर बन रही हो उसके लिए अपने शरीर का रक्त भी दिया जा सकता है। पैसे के जरूरत-मन्द को पैसे से, बीमार को दवा दारू से, भूखे को भोजन से, सहायता की जा सकती है इसके लिए आत्म शक्ति का खर्च करना उचित नहीं। शरीर की सहायता के लिए शरीर से या उसके द्वारा उपजाई हुई संपदा दी जा सकती है। आत्म बल का उसमें प्रयोग करना निष्प्रयोजन है।

आत्म शक्ति अपने दुर्गुणों को हटाने और सात्विकता की ओर बढ़ाने में, ईश्वर के प्राप्त होने में, उपयोग होनी चाहिए। दूसरों के मानसिक परिवर्तन में उसका उपयोग किया जा सकता है। यही उचित भी है। "शक्तिपात" की प्रथा पुरानी है। प्राचीन काल में सद्गुरु अपने शिष्यों पर 'शक्तिपात' किया करते थे। गोविन्द से गुरु को बड़ा बताया गया है। इतना महत्व इसलिए दिया गया है कि गुरु अपनी निजी कमाई को शिष्य के अन्दर इस प्रकार प्रवेश कर देता था कि अज्ञात रूप से उसका मानसिक परिवर्तन होजाता था। शिष्य का सारा मानसिक तन्त्र एक भारी झटके के कारण चलायमान होजाता था उसमें एक कँपकँपी-हलचल मच जाती थी। सारा मानसिक तन्त्र उलट पलट होजाता था। दीक्षा का यही असली तात्पर्य था।

दूसरों पर आत्म शक्ति के उपयोग करने का उचित मार्ग यही है। जिन्हें आत्मबल प्राप्त है उन्हें दूसरों की सेवा करने के लिए वह करना चाहिए जिससे अन्य व्यक्तियों की आन्तरिक प्रगति में परिवर्तन उपस्थित होजाय। भ्रान्त और अशुद्ध मार्ग का परित्याग करने और सद्मार्ग को अपनाने की इच्छा और आकांक्षा जागृत होजावे। यह इच्छा आकांक्षा जितनी दृढ़ एवं श्रद्धान्वित होगी उतनी वह अधिक उन्नति करेगा। इसलिए शक्तिपात द्वारा सत्य को प्राप्त करने की तीव्र लालसा सद्गुरु अपने शिष्यों में जागृत किया करते हैं। एक मनुष्य जो दूसरे को दे सकता है उन सब में यही दान सबसे बड़ा है। सद्गुरु अपने शिष्य को यही चीज़ दे डालता है इसलिए उसका दर्जा सब से ऊंचा-गोविन्द की बराबर-माना गया है।

मैस्मरेजम की आरम्भिक सीढ़ी पर चढ़ने के पश्चात् अथवा अन्य प्रकार की साधनाओं के पश्चात् जिन्हें कुछ आत्मबल प्राप्त हो, उनके लिए हमारी शास्त्र सम्मत सलाह है कि उस शक्ति को वाहवाही लूटने में, किसी को भौतिक वस्तुयें दिलाने में खर्च न करें। वाहवाही लूटने में इस कष्ट साध्य शक्ति का व्यय करना ऐसा है जैसा नोट जला कर आग तापना। भौतिक वस्तुऐं तो पुरुषार्थ से कमाई जाती है। वस्तुओं का अभाव होने पर मनुष्य अधिक पुरुषार्थ और जागरूकता सीखता है, यदि मुफ्त का माल मिले तो उसकी आत्मिक प्रगति रुक जाती है इस लिये इस झंझट में भी नहीं पड़ना चाहिए। अभाव ग्रस्तों को पुरुषार्थ के लिए उत्साहित करना चाहिए और भौतिक वस्तुओं से सहायता करनी-करानी चाहिए। आत्म शक्ति का दूसरों के लिए एक मात्र उपयोग यही है कि उन्हें पापके, पतन के, अकर्मण्यता के, मार्ग से हटाकर सत्मार्ग, की आकुलता उत्पन्न करानी चाहिए। अनुयायियों को हमारी यही सलाह है कि वे मैस्मरेजम अथवा अन्य मार्गों से जो शक्ति उत्पन्न करें उसे आत्म कल्याण में तथा दूसरों को ठीक रास्ते पर लाने में खर्च करें। अन्यदिशा में एक भी कदम न उठाएं।

में लोग अपराधी को
से इसी मेस्मेरिज्म का
स्था को समाधि रूप
[विद्याभूष अवस्था केवल पवित्र
ो है। विचारों की
ह शक्ति उत्पन्न

कर उन्हें गिनने का अभ्यास करो। इस रीति
नित्य ५ मिनट, १० मिनट और बाद में
के लिये ज्यादा
साथ मन सम्पादक 'मोहिनी']
पवित्र
मेरी

मेस्मेरिज्म और हिप्नोटिज्म एकप्रकाशित हो नाम हैं। किन्तु, इनके अर्थ और क्रिया गुण पर महत्व परिलक्षित होता है। मेस्मेरिज्म भी इस ण प्रयोग' और हिप्नोटिज्म को 'मो. विशारदों हते हैं। मेस्मेरिज्म के प्रयोग में हाथ की। रसदार र,और दृष्टिको शांति रखना पड़ता है। तब दुष्ट थी जा सकती है। जबकि हिप्नोटिज्म में मन्त्र से रोगी को निद्रा-वश किया जाता है। इस द्या का संसार में कुल १५० वर्ष से प्रचार हुआ । परन्तु यथार्थ में इसका आधार प्राचीन भारत योग विद्या ही है, जो संसार की यावतीय श्चर्यमय विद्याओं की जननी है आर्य और उनके राज योग विद्या के पूर्ण जानकार थे। अतः योग मूल स्थान भारतवर्ष ही होसकता है। भारत से ह विद्या पहिले अरबस्तान और बाद में ईरान, नान, मिस्र और रोम आदि में प्रचलित हुई और लान्तर में संसार के कोने २ में प्रचलित होगयी।

विषय की तह तक पहुंचने के लिये यदि यह हा जाए कि आज के सुधरे हुये नाम मेस्मेरिज्म। हमारे पूर्वज अपने समय में योग के रूप में नते थे तो भी कोई हानि नहीं होगी। क्योंकि मेरिज्म और हिप्नोटिज्म देखा जाय तो योग विद्या ही अङ्ग हैं। संसार के धर्म शास्त्रों में सन्त, हात्मा, समर्थ पुरुष और पैगम्बर आदि के जो मत्कार हम पढ़ा करते हैं, वह एक मात्र योगिक मत्कार के ही द्योतक हैं। देखने और अनुभव करने लों ने कभी उन्हें जादू, कभी योग और कभी स्मेरिज्म कहकर प्रसिद्ध किया है। हमारे अनेकानेक न्त,महात्मा, योग रूपी मेस्मेरिज्म जानते आये हैं। ौर इसकी सहायता से समय २ पर हाथ के स्पर्श प्रभाव उन्होंने कठिन से कठिन रोग के रोगियों को का रोग मुक्त किया है। आज भी ऐसी घटनाएँ बराबर होती रहती हैं और हिन्दू धर्म शास्त्र तथा धार्मिक इतिहास में तो इसके असंख्य उदाहरण भरे पड़े हैं। बाईबिल में क्राइस्ट के हाथ से सैकड़ों रोगियोंके रोग मुक्त होने और अन्धचक्षु को पुनः आँखें प्राप्त होने के जो दृष्टान्त आये हैं, वे भी इसी विद्या का समर्थन कराते हैं। पारसी समाज के पैगम्बर जरथुस्त भी इस विद्या से भली भांति परचित थे। हिन्दू इतिहास के सैकड़ों उदाहरणों में भस्मासुर के एक उदाहरण को ही हम लें तो उस पर से योग। और मेस्मेरिज्म का अन्योन्याश्राय सम्बन्ध सिद्ध होने में कोई शङ्का नहीं रह जाती। भस्मासुर ने तपस्या पूर्वक शिवजी से यह वरदान प्राप्त किया था कि वह जिस पर हाथ रखे वह तत्काल भस्म होजाये। फलतः हजारों निर्दोष मनुष्य भस्मासुरके इस उत्पात से भस्मीभूत होगये और दैवी शक्ति सम्पन्न देवता तक त्राहि २ पुकारने लगे। तब विष्णु भगवान ने देवों को अभय वचन देकर भस्मासुर संहार के लिये मोहिनी रूप धारण किया। और अपने हाथ पावों की कलामय क्रिया से नृत्य करने लगे। इधर भस्मासुर ने भी मोहिनी रूपधारी विष्णु की नृत्य क्रिया का अनुकरण किया और ज्योंही उसने अपने शिर पर हाथ रखा कि वह खुद सदैव के लिये भस्म हो गया। इस पर से यह स्पष्ट हैं कि मेस्मेरिज्म और हिप्नोटिज्म योग साधना के ही अङ्ग हैं और उनका मूल स्थान भारतवर्ष ही है। हिमालय के अनेक सिद्ध महात्माओं और तिब्बत के लामाओं की विचित्र बातें तो आज भी देखी सुनी जारही हैं। इस तरह साधक और अभ्यासार्थी के पक्ष में क्या योग,

क्या जादू, क्या मस्पद, कीर्ति, विद्या, आदि संपदायें, करना कोई असम्भव नहीं है। कुछ्यान्त कर सकता है। लण्डन के एक भारतीय मुस्लिम योगी ने आग पै चल कर वहाँ के विज्ञानाचार्यों को आश्चर्य विमुग्ध कर दिया था। इसी एक योगी द्वारा आँख में पट्टी बाँधकर क्रिकेट आदि के खेल खेलने को भारतीय करामातों का भी प्रर्शदन हुआ था। भारतीय बाजीगरी के अद्भुत खेलों के सम्बन्ध में पश्चिमी देशों के निवासी पूर्ण विश्वास रखते हैं और इसके लिये उन के यहाँ नाना प्रकार की खोजें जारी हैं। कहने का तात्पर्य यह कि मेस्मेरिज्म या हिप्नोटिज्म किसी भी अवस्था में नवीन विद्या नहीं कही जा सक्ती, जब कि संसार प्रसिद्ध आश्चर्यमयी विद्याओं की जननी योग साधना का पहिले से ही आस्तित्व कायम है।

जो लोग इस प्रकार के चमत्कारों का प्रदर्शन करते हैं, उनके प्रति दर्शकों में और संशय उत्पन्न हो आता है। महात्मा गौतम बुद्ध के ज्ञान के अनुसार ये चमत्कार तीन प्रकार के होते हैं—(१) गुप्त चमत्कार (२) प्रगट चमत्कार और (३) ज्ञान शक्ति से उत्पन्न (बौद्धिक चमत्कार) गुप्त चमत्कारों में एक व्यक्ति सिद्धि द्वारा गुप्त शक्तिओं का धारी होता है। उदाहरण स्वरूप एक से अनेक हो जाना, अनेक से एक होजाना, अदृश्य हो जाना, दीवाल, दुर्ग किवाँ पर्वतों में वायु वेगसे प्रवेश करना और लौटना, इसी तरह जल में प्रवेश करना और ज़मीन पर निकलना, हवा में उड़ना, सूर्य, चन्द्र की सीमा को स्पर्श करना इत्यादि इत्यादि ये सब प्रथम श्रेणी के योगिक चत्मकारों में आते हैं और इस भांति के सैकड़ों दृष्टान्त हमारे इतिहास तथा धर्म ग्रन्थों में मौजूद हैं। दूसरे प्रकार के प्रगट चमत्कारों में एक व्यक्ति दूसरों के अतः करण में प्रवेश करके उनकी विचार धारा जान सक्ता है। और यह चमत्कारी सिद्धि हम आज भी कई साधु सन्तों में पाते हैं ... महात्मा बुद्ध ने इसे महान चम-

जैसे को देना के क... जि... भूत रिज्म

मार्ग का परित्याग करने की इच्छा और आकांक्षा इच्छा आकांक्षा जितनी उतनी वह अधिक उन्न द्वारा सत्य को प्राप्त गुरु अपने शिष्यों मनुष्य जो दूसरे सबसे बड़ा चीज़ दे डाल ऊंचा-गोकि

माना है। यह तीसरा समानता रखता है। प्राप्त करने में समर्थ चारों पर पूरा २ अधिशास्त्र में यह महान शक्ति बताया है, वह यह कि मन आकर्षण से निकाल कर ... की दृष्टि से शुद्ध किया योगाभ्यास में अवश्य ही फलीने की आवश्यक्ता नहीं कि मेस्मे... युक्त बौद्धिक चमत्कार से मिलती जुलती ... मैं दिया है।

मेस्मेरिज्म को जादू नहीं कहा जा सक्ता क्यों कि यह शुद्ध अर्थ में योग क्रिया सिद्धि है। जादू दो प्रकार का होता है (१) सफेद जादू (२) काला जादू। सफेद जादू में योग की क्रिया है पर काला जादू में कोपक दुष्टात्मा की शक्ति विद्यमान है। अतएव, जादू और मेस्मेरिज्म एक अर्थ में नहीं लिये जा सक्ते। मेस्मेरिज्म में कठिन रोगों के रोगियों को रोग मुक्त करने की विधि मुख्य है। और इस विधि को क्रमशः तीन भाग में विभाजित किया गया है। (१) औषधि (Medicine), (२) शस्त्र। क्रिया (Surgern). (३) पवित्र मन्त्र (Occult-Secret) इसे पवित्र मन्त्रों के प्रयोग को प्राचीन योगिक प्रयोग ही कहा जा सक्ता है। मेस्मेरिज्म में उपर्युक्त विधि के अनुसार नाना प्रकार के रोग और व्याधियाँ दूर होती हैं जब कि हिप्नोटिज्म चित्त को भ्रम में डाल कर सूचनाओं के अनुसार मनुष्य की चित् शक्ति को अपने लिङ्ग शरीर में घुसाया करता है। इसकी मुख्य ६ अवस्थाएँ हैं (१) तन्द्रा (२) निद्रा, (३) प्रगाढ़ सुषुप्ति, (४) अनुवृत्ति, (५) दिव्य दृष्टि, (६) प्रत्यक्ष दृष्टि। इन छह अवस्थाओं में पहिली तीन प्रकार की अवस्थाएँ स्वाभाविक रूप से सर्वत्र दिखायी देती हैं। इसके बाद की पाँचवीं और छटी अवस्थाओं में भूत, भविष्य और

.डल सक्ता है। अमेरिका में लोग अपराधी को पकड़ने के लिये आज दिन इसी मेस्मेरिज्म का प्रयोग कर रहे हैं। अन्तिम अवस्था को समाधि रूप में जाना जा सक्ता है और यह अवस्था केबल पवित्र से पवित्र शरीर को ही प्राप्त होती है। विचारों की पवित्रता और उच्च भावना से यह शक्ति उत्पन्न होकर पीत रङ्ग की छाया रूप से प्रकाशित हो उठती है। यह छाया मनुष्य के चारित्र्य गुण पर आधारित है अनेक धर्म शास्त्र और विज्ञान भी इस का समर्थन करते हैं। फ्रान्स के विज्ञान विशारदों की शोध के अनुसार मनुष्य शरीर में से एक रसदार पदार्थ रूपी विद्युति प्रवाह होता रहता है और दुष्ट हृदयों से यह दुर्गन्ध रूप तथा सज्जनों के शरीर से सुगन्ध रूप होकर बह रहा है। यह प्रवाह एक [illegible] से दूसरे शरीर में भी प्रवेश कर सकता है। [illegible] होगा कि एक मात्र इस शक्ति के ऊपर मेस्मेरिज्म की आधार शिला रखी गई है। इस [शक्]ति के प्रयोग से कोई भी व्यक्ति वायु में उड़ सकता [र]ोगों का निवारण कर सकता है आदि २। इस [प्र]कार के मानसिक प्रवाह को हमारे शास्त्रों में [ते]जस' और अँग्रेजी में "Aura" कह कर घोषित [कि]या गया है। अस्तु,

यह आश्चर्यजनक विद्या किसी को अल्पाभ्यास [क्ष]ण में प्राप्त नहीं हो सकती। इसको जीतने के [लि]ये आत्म विश्वास, दृढ़ इच्छा शक्ति, दृढ़ सङ्कल्प, [प]रमार्थ-बुद्धि, वेधक दृष्टि, स्वस्थ्य शरीर, अखण्ड [ब्रह्मच]र्य, शुद्ध आहार विहार और शान्त चित्त होना [आ]वश्यक है। इसके बाद अध्यात्म क्षेत्र में प्रवेश कर और सफलता पाने के लिये यह भी प्रयोजनीय है [कि] नित्य ब्राह्म मुहूर्त में उठो। शान्त कमरे में प्रविष्ट कर एकाग्रता से ध्यान करो। किसी वस्तु विशेष [प]र एकाग्र दृष्टि डालने का साधन करो, सूर्यदेव को [उस] दृष्टि से देखो— इससे ही आं[खों] में-कुर्स मकना-[तीसी] पैदा होती है। किसी पवित्र मूर्तिका ध्यान करो [य]दि इसमें चित्त वृत्ति स्थिर न हो तो एक सफेद कागज [पर] [illegible]

कर उन्हें गिनने का अभ्यास करो। इस रीति से नित्य ५ मिनट, १० मिनट और बाद में इस नियम के लिये ज्यादा समय देने का अभ्यास करो। साथ साथ मन को सन्तोष देते रहो कि मेरी आंखों में पवित्र बल है, ज्ञान तन्तु सवल और दृढ़ हैं और मेरी आंखों में दूसरों को क़ाबू में रखने का विलक्षण प्रभाव है। मैं सर्वथा निर्भय हूँ दूसरों पर सत्ता कायम करने के लिये मुझमें मानसिक और शारीरिक बल की पूर्णता है। ऐसी नियमित भावना और अभ्यास करने से एक न एक दिन हम अपने आप मेस्मेरिज्म के तत्व को पहुँच सकते हैं। इसके अतिरिक्त एक दूसरा मार्ग भी है और इसे दीर्घ श्वास खींचने की क्रिया कहते हैं। यह हमारे प्राणायाम से मिलता जुलता मार्ग है यह प्रयोग गृह की अपेक्षा एकान्त-स्थल में करने से शीघ्र और अधिक सफलतादायी सिद्ध होता है। क्यों कि यहां आकर्षण शक्ति और एकाग्रता सरलता से स्फुरित हो जाती हैं। परन्तु आज के मेस्मेरिज्म जानने वाले सब के सब योग सिद्ध पुरुष नहीं हो सकते। क्योंकि उनमें उपर्युक्त गुणों का सर्वथा अभाव रहता है। बहुत से तो लालचवश मेस्मेरिज्म को धन पैदा करने का साधन बनाने में लगे हुए हैं और बहुत से इसके द्वारा दूसरों को कष्ट पहुंचाने और नीचा दिखाने का उपाय करते पाये जाते हैं। कई एक इस के अधकचरे ज्ञान के बल पर भीख कमाने में लगे हुये हैं। अतः इन लोगों से इस विद्या की जानकारी प्राप्त करने का स्वप्न देखना सर्वथा भ्रम पूर्ण है इस विषय के ज्ञान की हर भाषा में एक से एक बढ़ कर अलग २ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। अतः इसके अभ्यासार्थियों को पहिले उन पुस्तकों का अध्ययन करके मूल विषय की सम्पूर्ण अभिज्ञता प्राप्त करना चाहिये।

गद्य-काव्य

* मुरझाया हुआ फूल *

[ले०—राजकुमारी-रत्नेशकुमारीजी, मैनपुरी स्टेट]

न जाने कानों में कौन कह गया कि-प्रियतम पधार रहे हैं। शरीर में बिजली सी दौड़ गई। ज्ञान और भक्ति रूपी उबटन, तैल इत्यादि लगा कर खूब मल २ कर स्नान करने के बाद मैंने अपने को गीतोक्त दैवी सम्पत्तियों के बहुमूल्य वस्त्राभूषण से सुशोभित किया। सज बजकर मैंस्वरूप दर्शन हित विमल मति रूपी दर्पण के आगे खड़ी हो गई। अपनी शृङ्गार छटा देख कर मैं मुस्कराई—क्या इतने पर भी प्रियतम प्रसन्न न होंगे । मैं हृदयोद्यान से दौड़ कर सुंदरतम् सुगन्धित पुष्प तोड़ लाई और उनका हार गूँथने लगी। साथ ही साथ विचारों की लड़ियाँ भी गूँथती जा रही थी। प्रियतम आऐंगे तब मैं यह हार मुस्कराती हुई उनके गलेमें डाल दूंगी। फिर आपभी उन के हृदय से लग जाऊँगी और अनुराग पूर्वक कहूँगी 'प्रियतम बड़ीराह दिखवाई'। मधुर २ स्नेहमयी बातें होंगी और तन, मन, जीवन न्यौछावर कर दूंगी उन की मन मोहनी मूर्ति पर इत्यादि न जाने कितने मनोरथ मन में उठ रहे थे, हृदय आनन्द से उछल रहा था। प्रति क्षण प्रियतम के आगमन की आशा कर रही थी। कहीं कुछ आहट पाने पर उल्लास से हृदय भर जाता, आँखें दरवाजे की तरफ़ पहुँच जातीं, होठों पर एक मधुर मुस्कान छा जाती।

प्रियतम आरहे हैं। समय धीरे २ बीतने लगा प्रतीक्षा करते २ एक आशंका उठ २ कर मुझे व्याकुल करने लगी अगर कहीं प्रियतम न आए तो? मेरा मुँह सूखने लगा आँखें सजल हो गईं बड़ी बेचैनी मालूम पड़ने लगी। धीरे २ आशंका ने बलवती होकर विश्वास का रूप धारण कर लिया, प्रियतम नहीं आवेंगे। आंखों से आँसुओं की धारा बहने लगी आँखों का काजल बह गया। बेचैनी के मारे पृथ्वी हुई अलकावली बिखर कर धूलमें सन गई। आभूषण टूट २ कर धूलमें मिलगये सुन्दर रेशमी वस्त्रों में धूल लिपट गई। सुगन्धित तैल अङ्गराग इत्यादि से बड़े परिश्रम लगन तथा विचार पूर्वक गूंथा हुआ हार हाथ से गिर कर टूट गया था। सुगन्धित तैल इत्यादि से सुगन्धित शरीर धूल धूसरित होगया। पर अब इसकी चिन्ता किसे थी बस एक ही विचार हृदय में उठ २ कर तड़पा रहा था, हाय! सचमुच ही प्रियतम नहीं आवेंगे।

धीरे २ व्याकुलता ने मर्मान्तक पीड़ा का रूप धारण कर लिया मैं बिना जल की मछली की तरह तड़पने लगी और हृदय में विचार करने लगी-ठीक तो है, मैं विश्व-मोहन को शृङ्गार दिखाने चली थी जैसे कोई मूर्खता-वश सूर्य को दीपक या जुगुनू समुद्र को जल कुवेर को धन कामदेव को रूप तथा सुमति को ऐश्वर्य का अभिमान दिखाए। मेरा यह अपराध उनसे भी गुरतर है। इसका जो कुछ दंड मिल रहा है वह परम उचित है हाय मैंने यह न सोचा कि मुझे भला सौन्दर्य सागरको रिझाने लायक क्या है? जिनके कण मात्र सौन्दर्य से जगत सौन्दर्यवान होता है जिनके सौन्दर्य की किन्चित मात्र झलक किसी वस्तु में देखकर हमारा मन मुग्ध हो जाता है उन्हे मैं भला क्या रिझा सकती हूँ? पर सोचती कैसे? शृङ्गार अभिमान से तो अन्धी हो रही थी। मैं इसी योग्य हूँ, तुमने ठीक ही किया नाथ जो दर्शन नहीं दिया। मुझे इसी तरह तड़पने दो मैं इसी लायक हूँ। व्यथातिरेक से मैं मूर्छित होगई. न जाने कितनी देर बाद मुझे ऐसा लगा कि मेरी व्यथा धीरे २ कम हो रही है, न जाने कौन मेरे हृदयमें आनन्द भर रहा है, मेरी आँखें खुल गईं, मैंने देखा मोहन दर्वाजे पर खड़े हुए अपनी मन मोहनी मुरली ... रहे हैं कि जिसके मधुर स्वर से

तथा अपनी सुधा वर्षिणी प्रेम दृष्टि से चितचोर मेरे हृदय की समस्त व्याकुलता का हरण कर रहे हैं। मैं बड़ी देर तक एक-टक मन मोहन की तरफ देखती रही।

मुझे तन मन की सुधि भूल गई प्रियतम के सिवाय और कुछ भी याद न रहा। फिर मैं सँभाल कर उठी चारों तरफ देखा सिवाय टूटे हुए हार के मुरझाए हुए फूलों के और वहाँ था ही क्या? मैंने उन्हें ही यत्न पूर्वक चुनकर दीनता पूर्वक जीवन सर्वस्व के चरणों पर चढ़ा दिया स्वीकार करें न करें की आशंका से मेरा हृदय धड़क रहा था। मैंने देखा कि सारी कुकल्पनाऐं मिट गईं। निश्चय ही दया-निधान ने मेरी उस महान धृष्टता पर ध्यान नहीं दिया क्योंकि उन्होंने यत्न पूर्वक टूटे हुए हार को जोड़ा और मुरझाये हुए फूल उनके हृदय पर झूलने लगे एक निश्चिन्तता तथाकृतज्ञता पूर्ण पवित्र मुस्कान मेरे होटों पर आगई, पवित्र इससे कि अब उसमें अभिमान का मिश्रण नहीं था। उन फूलों को जो सम्मान प्रभुने दिया उसे देखकर मेरा साहस बढ़ गया। ये मानों मेरे प्रियतम की कृपालुता और क्षमा शीलता का खुशी से झूम २ कर मूक स्वर से गान कर रहे थे और मैं भी करुणा निधान के चरणों पर गिर पड़ी क्योंकि मैं भी तो अब एक मुरझाया हुआ फूल ही थी।

दूसरे को दुःख देना तो अज्ञानता है। परन्तु दूसरे के प्रति दुःख उठाना सत्य के नजदीक पहुंचना दुःख ही लोगों को दया और कृपालुता सिखाता है।

× × × ×

हाथ वे ही पवित्र हैं जो परोपकारी हैं। पैर वे ही सुन्दर हैं जो छुद्राति छुद्र के घर में दया वश पहुंच जाते हैं। स्कन्ध वही शुद्ध हैं, जो दूसरे की चिन्ता को अपने ऊपर रखलेते हैं।

× × × ×

ब्रह्मचर्य का अनुभव!

[श्री. बालजी कानजी, राज कल्यानपुर]

ब्रह्मचर्य का पालन आरंभ में कुछ कठिन मालूम पड़ता है। जिनकी वासना, तृष्णा तथा कामनाऐं डांवाडोल है, क्षण क्षण में इधर उधर डोलती हैं उनके लिए कठिन और कष्ट साध्य है भी परन्तु जो लोग आत्मनिष्ठ हैं जीवन को किसी श्रेष्ठ मार्ग पर लेजाना चाहते हैं उनके लिए इसमें कठिनाई की कुछ भी बात नहीं है। खर्च करने में लोग आनन्द समझते हैं पर जिन्हों ने अनुभव किया है वे जानते हैं कि कमाने में भी एक खास किस्म का आनंद है और वह खर्च करने के आनंद में ऊंचे दर्जे का है।

ब्रह्मचर्य के पालन से आरोग्यता, दीर्घायु, बुद्धि वृद्धि, आत्मोन्नति आदि फल तो प्राप्त होते ही हैं परन्तु इस महाव्रत के पालन की साधना में जो आनंद, आत्म संतोष और उल्लास है उसका मजा अपने ढंग का अनोखा ही है। मैं अब करीब ६० वर्ष का होचला हूं और बिगत २० वर्षों से मन बचन तथा काया से ब्रह्म चर्य की साधना कर रहा हूँ। इसमें मुझे जितना आनंद आता है उसका वर्णन लेखनी द्वारा कर सकना मेरे लिए संभव नहीं है। यह गूंगे का गुड़ है। जो भाई बहिन इस व्रत का पारायण करेंगे वे ही मेरी तरह इस अमृत रस को चखेंगे।

सात्विक आहार और भजन पूजन करते रहने से ब्रह्मचर्य का पालन बहुत सरल हो जाता है। मैं बहुत करके फलाहार करता हूँ। सात्विक आहार से शरीर और मन भी सात्विक बनता है और संयम पूर्ण जीवन बिताना सरल होजाता है। नवयुवकों को बड़ी उम्र तक ब्रह्मचारी रह कर अपना शारीरिक और मानसिक विकास करना चाहिए और गृहस्थों को दो चार संतान हो जाने पर वानप्रस्थ की तरह संयमी जीवन बिताते हुए परलोक साधना करनी चाहिए यही शास्त्रों की आज्ञा है और यही मेरा निवेदन है।

प्रेम ही सुख शान्ति का मूल है।

[श्री. पं० मुरारीलाल शर्मा, 'सुरस' मथुरा]

भगवान ने अपनी सृष्टि को सुन्दर और सुव्यवस्थित बनाने के लिए जड़ और चैतन्य पदार्थों को एक दूसरे से सम्बन्धित कर रखा है। निखिल विश्व ब्रह्माण्ड के ग्रह नक्षत्र अपने अपने सौर मण्डलों में आकर्षण शक्ति के द्वारा एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। यदि यह सम्बन्ध सूत्र टूट जाय तो किसी की कुछ स्थिरता न रहे। सारे ग्रह नक्षत्र एक दूसरे से टकरा जावें और सम्पूर्ण व्यवस्था नष्ट हो जावे। इसी प्रकार आपसी प्रेम सम्बन्ध न हो तो जीवधारियों की सत्ता भी स्थिर न रह सकेगी। जरा कल्पना तो कीजिए। माता का बालक से प्रेम न हो, पति का पत्नी से प्रेम न हो, भाई का भाई से प्रेम न हो तो कुटुम्ब की कैसी दयनीय अवस्था हो जाय। यह भ्रातृ भाव, स्नेह सम्बन्ध, नष्ट हो जाय तो सहयोग के आधार पर चलने वाली सारा सामाजिक व्यवस्था पूर्णतया नष्ट भ्रष्ट हो जाय। सृष्टि का सारा सौन्दर्य जाता रहे।

हर एक प्राणी के हृदय में प्रेम की अजस्र धारा बह रही है। पशु पक्षियों को देखिये वे अपने बच्चों को कितना कष्ट सह कर पालते हैं यदि कोई उन बच्चों पर आक्रमण करता है तो प्राणों की परवाह न करके उसकी रक्षा में बड़े से बड़े खतरे का सामना करते हैं। विचार कीजिए कि ऐसा क्यों होता है? क्या वे बच्चे उन्हें कमाई खिलावेंगे? या बुढ़ापे में उनकी सेवा करेंगे? नहीं, बड़े होने पर तो वे माता पिता को पहिचान भी न सकेंगे, बदला चुकाना तो दूर की बात रही। यह प्रेम स्वार्थ के ऊपर अवलम्बित नहीं है। अन्तःकरण में प्रेम की जो निर्झरिणी निरन्तर बहती रहती है यह उसी की प्रेरणा है। निस्वार्थ भाव से प्रेम करना एक स्वाभाविक प्रवृति है जिसके ऊपर सम्पूर्ण जातियों की शान्ति और सुव्यवस्था निर्भर है।

मानव जाति के इतिहास में कई बार भले और बुरे समय आये हैं। सतयुग और कलियुग के नाम से हम उन्हें याद रखते हैं, कोई समय ऐसा आता है जब सामूहिक रूप से सर्वत्र शान्ति और सुव्यवस्था दिखाई पड़ती है यही सतयुग है। कोई समय ऐसा आता है जब सब जगह कलह, क्लेश, अभाव और अशान्ति का बाहुल्य रहता है यही कलियुग है। इन परिवर्तनों का कारण मनुष्य की उस प्रेम शक्ति का उन्नत अवनत होना है। जब लोगों की प्रवृत्ति स्वार्थ की ओर बढ़ती है तो अस्वभाविक अवस्था का-क्लेश युद्ध, अभाव, अशान्ति का चारों ओर प्रसार हो जाता है, लोगों के कष्ट बढ़ जाते हैं, दिन दिन अवनति दिखाई देने लगती है। तब कहते हैं कि अब कलियुग का राज्य है। इसके विपरीत जब मानव जाति स्वार्थ में कमी करके प्रेम के परमार्थ में अधिक दिलचस्पी लेती है, स्नेह, सहयोग, भ्रातृ-भाव परोपकार को अधिक महत्व देती है तो सर्वत्र शान्ति, सुव्यवस्था और सम्पदा दिखाई पड़ने लगती है, इस प्रेम-युग को इतिहासकार 'सतयुग' नाम से उल्लेख किया करते हैं।

यदि हम सुख, शान्ति और सम्पदा पसन्द करते हैं तो आवश्यक है कि प्रेम भाव को अपनावें। दूसरों से उदारता, दया, मधुरता, भलमनसाहत और ईमानदारी का बरताव बरतें। जिन लोगों ने अपनी जीवन नीति प्रेम मय बना रखी है वे ईश्वर प्रदत्त मानवोचित आज्ञा का पालन करने वाले धर्मात्मा हैं ऐसे लोगों के लिए हर घड़ी सतयुग है। चूंकि वे स्वयं सतयुगी हैं इसलिये दूसरे भी उनके साथ सतयुगी आचरण करने को विवश होते हैं।

जो प्रेम को अपनाता है उसके जीवन पथ की अनेक बाधाऐं हट जाती हैं। उसे गरीबी में भी अमीरी का आनन्द आता है। जिस कुटुम्ब में, समाज में, प्रेम भाव की प्रचुरता है वहाँ साक्षात् स्वर्ग ही समझिए, इसके विपरीत ईर्ष्या, द्वेष, स्वार्थ, कपट की जहाँ अधिकता है वे राजमहल भी नरक की ज्वाला में सुलगते रहेंगे। धर्म शास्त्रों में ईश्वर भक्ति का बड़ा महात्म्य है। विचारपूर्वक देखा जाय तो यह साधना मनुष्य की प्रेम भावना को ऊँची उठाने के लिए है। भक्ति द्वारा मनुष्य प्रेम वृत्ति को उन्नत करता है, जिससे स्वर्गीय आनन्द सहज ही उसे प्राप्ति हो जाता है। यदि प्रेम भावना न हो तो केवल कर्मकाण्ड मात्र, की जाने वाली पूजा पत्री निरर्थक है। महात्मा मलूक दास ने कहा है कि—

मक्का, मदीना, द्वारिका, बद्री और केदार।
बिना प्रेम सब झूँठ हैं, कहें मलूक विचार॥

निस्सन्देह मनुष्य की वैयक्तिक तथा सामाजिक, लौकिक तथा पारलौकिक सुख शांति प्रेम के ऊपर निर्भर है। अतएव हमें अपने जीवन में निस्वार्थ प्रेम भावना को अधिकाधिक उन्नत तथा चरितार्थ करना चाहिये।

सूत बनना अच्छा है सुई होना ठीक नहीं, क्योंकि सुई तो दूसरी वस्तु में छेद करती है और सूत इतना परोपकारी है कि अपना अंग देकर खाली स्थान को पूरा करता है।

× × × ×

समुद्र में एक बार गोता लगाने से मोती न मिले तो दूसरी बार गोता लगाओ मोती अवश्य ही मिलेगा, एक बार गोता लगाने से मोती न मिलने पर यह न समझना चाहिए कि समुद्र में मोती हैं ही नहीं।

× × × ×

अधर्म मय और अनीति वान मित्र के बजाय धर्म और नीति युक्त शत्रु अच्छा है।

× × × ×

पहले दो तब मिलेगा।

(श्री. मंगल चंद भंडारी 'मंगल' हि० सा० वि० अजमेर)

संसार का यह अचल नियम कितना सत्य है कि "पहले दो तब मिलेगा" पेट में पहले भोजन पहुंचाया जाता है तब वह हमें रक्त जैसी अमूल्य वस्तु प्रदान करता है, घड़ी में पहले चाबी दी जाती है तब वह हमें ठीक समय देती है, कुंऐ में पहले बर्तन डालते हैं तब उसमें पानी आता है, दान देने वाले पहले देते हैं तब यश और कीर्त्ति के भागी बनते हैं, ब्याज खाने वाले पहले रकम देते हैं तब उन्हें ब्याज की कौड़ियां मिलती हैं, चक्की में पहले गेहूँ डालते हैं, तब आटा मिलता है, किसान पहले बीज बोता है तब उसे कई गुना मिलता है; ब्यापारी पहले माल खरीदने में अपनी रकम लगाता है तब वह मुनाफा पाता है; पेड़ों को देखिये पहले वे बिना किसी आनाकानी के मीठे फल और पत्ते देते हैं तब उसकी जगह नये पत्ते और फल प्राप्त करते हैं; बिजली का पहले बटन दबाते हैं तब प्रकाश मिलता है; समुद्र पहले बादलों को अपना जल देता है तब उसे इन्द्र कई गुना वापिस लौटा देता है; पहले किसी की सेवा करते हैं तब वह हमें कुछ देता है; किसी के हृदय पर शासन करने के लिये पहले अपना हृदय देना पड़ता है तब उसका हृदय प्राप्त कर सकते हैं; संसार की किसी जड़ चेतन वस्तु को लीजिये "पहले देने पर ही मिलेगा" यहाँ तक कि मन्द बुद्धि पशु जाति को ही लीजिये कुत्ते को रोटी और प्यार देने पर ही वह आपकी आज्ञा का पालन कर सकेगा, अन्यथा काट खाने को दौड़ेगा। भोले भाले अज्ञान बालक का हृदय भी देखिये पहले वह गेंद बिना किसी संकोच के धरती पर फेंक देता लेंकिन उस गेंद को धरती अपने पास नहीं रखती है बल्कि बालक को ही वापिस लौटा देती है।

कथा—

पाप का प्रलोभन !

[श्री. के० नन्द व्यास, नम्बरदार, गरौठा]

एक ब्राह्मण देवता दारिद्रता के कारण बहुत दुखी होकर राजा के यहां धन याचना करने के लिए चल दिये। कई दिन की यात्रा पार करके वे राजधानी पहुँचे। और राज महल में प्रवेश करने की चेष्टा करने लगे।

उस नगर का राजा बहुत चतुर था। वह दृढ़ निश्चयी और सच्चे ब्राह्मणों को ही दान दिया करता था। सुपात्र कुपात्र की परीक्षा के लिए राज महल के चारों दरवाजों पर उसने समुचित व्यवस्था कर रखी थी।

ब्राह्मण देवता ने महल के पहले दरवाजे में प्रवेश किया ही था कि एक वेश्या निकल कर सामने आई। उसने राज महल में प्रवेश करने का कारण ब्राह्मण से पूछा। देवता जी ने उत्तर दिया, धन याचना के लिए राजा के पास जाना चाहते हैं। वेश्या ने कहा इस दरवाजे से आप तब अन्दर जा सकते हैं जब मुझसे रमण करलें। अन्यथा दूसरे दरवाजे से जाइए। ब्राह्मण को वेश्या की शर्त स्वीकार न हुई, अधर्माचरण करने की अपेक्षा दूसरे द्वार से जाना उन्हें पसंद आया। यहां से वे लौट आये और दूसरे दरवाजे पर जाकर प्रवेश करने लगे।

दो ही कदम भीतर पड़े होंगे कि एक प्रहरी सामने आया। उसने कहा-इस दरवाजे से घुसने वालों को पहले माँसाहार करना पड़ता है। चलिए माँस भोजन तैयार है उसे खाकर आप प्रसन्नता पूर्वक भीतर जासकते हैं। ब्राह्मण ने मांसाहार करना उचित न समझा, और वहाँ से लौट कर तीसरे दरवाजे में होकर जाने का निश्चय किया।

तीसरे दरवाजे में जैसे ही वह ब्राह्मण घुसने लगा वैसे ही मद्य की बोतल और प्याली लेकर पहरेदार सामने आया और कहा—लीजिए। मद्य पीजिए, और भीतर जाइए, इस दरवाजे से आने वालों को मद्यपान करना ही पड़ता है। ब्राह्मण ने मद्यपान नहीं किया और उलटे पांव चौथे दरवाजे की ओर चल दिया।

चौथे दरवाजे पर पहुंच कर ब्राह्मण ने देखा कि वहाँ जुआ हो रहा है। जो लोग जुआ खेलते हैं वे ही भीतर घुसपाते हैं। जुआ खेलना भी धर्म विरुद्ध है। ब्राह्मण बड़े सोच विचार में पड़ा, अब किस तरह भीतर प्रवेश हों, चारों दरवाजों पर धर्म विरोधी शर्तें हैं। पैसे की मुझे बहुत जरूरत है। एक ओर धर्म दूसरी ओर धन दोनों का घमासान युद्ध उसके मस्तिष्क में होने लगा।

ब्राह्मण जरा सा फिसला, उसने सोचा-जुआ छोटा पाप है, इसको थोड़ा सा करलें तो तनिक सा पाप होगा। मेरे पास मार्ग व्यय से बचा हुआ एक रुपया है, क्यों न इस रुपये से जुआ खेल लूं और भीतर प्रवेश पाने का अधिकारी हो जाऊं।

विचारों को विश्वास रूप में बदलते देर न लगी। ब्राह्मण जुआ खेलने लगा। एक रुपये के दो हुए, दो के चार, चार के आठ, जीत पर जीत होने लगी। ब्राह्मण राजा के पास जाना भूल गया और दत्त चित्त होकर जुआ खेलने लगा। जीत पर जीत होने लगी। शाम तक हजारों रुपयों का ढेर जमा होगया। जुआ बन्द हुआ। ब्राह्मण ने रुपयों की गठरी बांध ली।

दिन भर से खाया कुछ न था। भूख जोर से लग रही थी। पास में कोई भोजन की दुकान न थी। पास में कोई भोजन की दुकान न थी। ब्राह्मण ने सोचा-रात का समय है कौन देखता है चल कर दूसरे दरवाजे पर मांस भोजन मिलता है वहीं क्यों न खालिया जाय। स्वादिष्ट भोजन मिलता है और

पैसा भी खर्च नहीं होता, दुहरा लाभ है। जरा सा पाप करने में कुछ हर्ज नहीं। ब्राह्मण के पैर तेजी से उधर बढ़ने लगे। भोजन तैयार था, मांस मिश्रित स्वादिष्ट भोजन को खाकर देवता जी संतुष्ट हो गये।

अस्वभाविक भोजन को पचाने के लिये अस्वाभाविक पाचक पदार्थों की जरूरत पड़ती है। गरिष्ट, तामसी, विकृत, भोजन करने वाले अकसर पान, बीड़ी, चूरन, चटनी, की शरण लिया करते हैं। देवता जी के पेट में जाकर मांस अपना करतब दिखाने लगा। अब उन्हें मद्यपान की आवश्यकता प्रतीत हुई। आगे के दरवाजे की ओर चले और मद्यकी कई प्यालियाँ चढ़ाई।

धन का, मांस का, मद्य का, तिहरा नशा उन पर चढ़ रहा था। काञ्चन के बाद कुच का, सुरा के बाद सुन्दरी का, ध्यान आना स्वाभाविक है! देवता जी पहले दरवाजे पर पहुंचे और वेश्या के यहां जा विराजे। वेश्या ने उन्हें संतुष्ट किया और पुरुष्कार स्वरूप जुए में जीता हुआ सारा धन ले लिया।

एक पूरा दिन चारों द्वारों पर व्यतीत करके दूसरे दिन प्रातः काल ब्राह्मण महोदय उठे। वेश्या ने उन्हें घृणा के साथ देखा और शीघ्र घर से निकाल देने के लिए अपने नौकरों को आदेश दिया। उन्हें घसीटकर घर से बाहर कर दिया गया। राजा को सारी सूचना पहुंच चुकी थी। आज वे फिर चारों दरवाजों पर गये और शर्तें पूरी करने के लिए कहने लगे पर किसी ने उन्हें भीतर न घुसने दिया। सब जगह से उन्हें दुत्कार दिया गया। ब्राह्मण दोनों ओर से भ्रष्ट होकर सिर धुन धुन कर पछताने लगे।

हम लोग उपरोक्त ब्राह्मण के पतन की निन्दा करेंगे क्योंकि वह "जरासा" पाप करने में विशेष हानि न समझने की भूल कर बैठा था। कि विचार करना चाहिए कहीं ऐसी ही गलतियां हम भी तो नहीं कर रहे हैं। किसी पाप को छोटा समझ कर उसमें एक बार फँस जाने से फिर छुटकारा पाना कठिन होता है। एक कदम नीचे की ओर धरने से फिर पतन का प्रवाह तीव्र होता जाता है और अन्त में बड़े से बड़े पापों के करने में भी हिचक नहीं होती। इस लिए आरंभ से ही सावधानी रखनी चाहिए। छोटे पापों से भी वैसे ही बचना चाहिए जैसे अग्नि की छोटी चिनगारी से सावधान रहते हैं।

सम्राटों के सम्राट परमात्मा के दरबार में पहुंच कर अनन्त आनन्द रूपी धन की याचना करने के लिए जीव रूपी ब्राह्मण जाता है। प्रवेश द्वार काम, क्रोध लोभ, मोह के चार पहरेदार बैठे हुए हैं। वे जीव को तरह तरह से बहकाते हैं और अपनी ओर आकर्षित करते हैं। यदि जीव उनमें फँस गया तो पूर्व पुण्यों रूपी गाँठ की कमाई भी उसी तरह दे बैठता है जैसे कि ब्राह्मण अपने घर का एक रुपया भी दे बैठा था। जीवन इन्हीं पाप जंजालों में व्यतीत हो जाता है और अन्त में वेश्यारूपी ममता के द्वार से दुत्कारा जाकर रोता पीटता इस संसार से विदा होता है।

देखना कहीं आप भी उस ब्राह्मण की नकल तो नहीं कर रहे हैं।

जो लोग कुछ प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें त्याग के इस अटल नियम को भली भांति हृदयङ्गम कर लेना चाहिए कि-पहले दो तब मिलेगा।

× × × ×

धैर्य पूर्वक विपत्तियों की प्रतीक्षा करने कुछ तो स्वयं ही नष्ट हो जाती हैं। जैसे समुद्र की लहरें पैरों तक आकर लौट जाती हैं।

× × × ×

जैसे किसी पहाड़ी पर चढ़ना दुर्गम दिखाई देता है। उसी तरह बिपत्तियों का सामना करना भी असह्य मालूम पड़ता है। परन्तु जैसे धीरे २ पहाड़ी पर चढ़ जाते हैं उसी तरह आपत्ति भी धैर्य रखने पर आसानी से दूर हो जाती है।

× × × ×

* स्वर-विज्ञान *

[राजकुमार श्री. हरभगतसिंहजी, भण्डार-स्टेट]

हमारी भाषा, संसार की समस्त भाषाओं में अपना विशेष ऊंचा एवं महत्व पूर्ण स्थान रखती है। लिखने और पढ़ने में कोई जरासी भी गड़बड़ी न पड़ना ऐसी विशेषता है जो अन्य किसी भाषा में नहीं है। खोज करने पर और भी अनेक असाधारण विशेषताऐं प्रकट होती जाती हैं। हमारे पूर्वजों ने वर्णमाला की रचना इस प्रकार की है जिससे पढ़ाई के साथ साथ शारीरिक एवं मानसिक उन्नति भी होती है। नीचे की पंक्तियों में यह बताने का प्रयास किया गया है कि स्वरों के उच्चारण से भीतरी अंगों में क्या प्रतिक्रिया होती है और उसका शरीर एवं मन पर क्या प्रभाव पड़ता है! विज्ञ पाठक इस पर गंभीरता पर्वक विचार करेंगे तो वे इस निश्चय पर पहुंचेंगे कि हिन्दी भाषा का पढ़ना न केवल अपनी सांस्कृतिक उन्नति करना है वरन् शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ को भी सुधारना है।

'अ' का उच्चारण कंठ द्वारा होने से हृदय पर प्रभाव पड़ता है जितनी वार "अ" का उच्चारण किया जायेगा, उतनी ही वार हृदय का संचालन शीघ्रता के साथ होगा। शरीर में रुधिर की शुद्ध अशुद्ध की क्रिया हृदय में ही होती है "अ" स्वर प्रत्येक अक्षर में वर्त्तमान है, यह हृदय को संचालित और तीव्र करता है तथा बलवान बनाता है। शरीर में शुद्ध रक्त का संचार करता है। मंत्र शास्त्र में "अ" स्वर रचनात्मक शक्ति-सम्पन्न माना गया है।

"आ" स्वर के उच्चारण से फेफड़ों के ऊपरी भाग तथा सीने पर प्रभाव पड़ता है। यह ऊपर की तीन पसलियों को बलवान बनाता है भोजन ले जाने वाली नली को शुद्ध दिमाग को संचालित आलस्य को दूर तथा फेफड़ों को उत्तेजित करके उनके ऊपरी भाग को शुद्ध करता है. इसके अभ्यास से दमा और खांसी के रोग अच्छे होते हैं, इस स्वर का अभ्यास उन लोगों को अवश्य करना चाहिये जिन्हें क्षयी रोग होने की संभावना हो,

'इ-ई' के लम्बे उच्चारण का प्रभाव गले तथा मस्तिष्क पर पड़ता है, इसके उच्चारण से गले, तालू, नाक और दिल के ऊपरी भाग की क्रिया विशेष रूप से उत्तेजित होती है स्वासेन्द्रिय का कफ, बलगम एवं आंतों में जमा हुआ मल निकलकर इन अंगों की सफाई होती है, इसका प्रभाव शरीर पर भी पड़ता है और शिर दर्द तथा दिलके रोगों के लाभदायक है। ऐसे लोगों पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ता है, जो उदास वृत्ति और क्रोधी स्वभाव के हैं।

"उ-ऊ" का प्रभाव जिगर, पेट और अन्तड़ियों पर पड़ता है और पेड़ू को कम करता है। जो स्त्रियां सदा पेडू के निम्न भाग के रोग से पीड़ित रहती हैं; उन्हें 'उ-ऊ' के उच्चारणों से बड़ा लाभ होगा। कितने ही दिनों का कठिन कब्ज क्यों न हो; इसके द्वारा दूर हो सकता है। यह स्त्रियों की कोख के लिये भी बहुत उपयोगी है।

"ए-ऐ" के उच्चारण का प्रभाव गले और स्वांस-नलिका के उद्भव स्थान पर पड़ता है और गुर्दे को उत्तेजित करता है, इसका बार बार उच्चारण मूत्र सम्बन्धी यावत रोगों को दूर करने तथा पेशाब उतारनें की औषधि का काम करता है। इस स्वर के प्रयोग का लाभ विशेष रूप से गाने वाली अध्यापकों तथा देर तक बोलने वालों को होता है और नलियों के अन्दरकी तिल्लीको स्वस्थ बनाता है।

"ओ-औ" का प्रयोग उपस्थेन्द्रिय और जननेन्द्रिय पर होता है और उसको स्वाभाविक रूप से काम करने में सहायता देता है। जब इसके उच्चारण का अच्छा अभ्यास हो जाता है तब यह अनु-

भव होता है कि जो आंतें तथा नसें सुस्त थीं वह खुल कर स्वाभाविक कार्य करने लगी हैं, यह सीने के मध्य भाग को उत्तेजित करता है। निमोनियां तथा प्लुरेसी के लिये बहुत लाभदायक है।

'ं' के उच्चरण से नासिका की शुद्धि होती है। नासिका द्वारा ली हुई सांस के साथ जो प्राण-वायु शरीर के भीतर जाता है वह दूषित रुधिर को शुद्ध तथा लाल बनाता है। नासिका द्वारा स्वांस लेने में नासिका और स्वांस-नलिका काम में आती है इसलिये इन अंगो को विकार रहित रहना आवश्यक है और इसी अभिप्राय से हमारे महर्षियों ने प्रत्येक बीज मंत्र के अन्त में 'म्' तथा अनुस्वार को रखा है तथा उसका देर तक लम्बा उच्चारण करना बतलाया है। स्वरों के उच्चारण से मुंह खुलता है, और अनुस्वार या 'म' के उच्चारन से ओष्ठ बन्द हो जाते हैं मानों प्रथम स्वरों के उच्चारण द्वारा शरीर के समस्त विकारों को दूर कर 'म' द्वारा ओष्ठ रूपी किवाड़ बन्द कर लिये जाते हैं जिसके वह विकार पुनः प्रविष्ट न हो सकें।

'अः' का उच्चारण जिह्वा तथा तालू के अग्र भाग को छूता है जिसका प्रभाव यह होता है, कि मस्तिष्क में सचालन उत्पन्न होने से एक प्रकार का रस स्त्रवित होता है जो कि कंठ द्वारा भीतर जाकर शरीर के सब विकार दूर करता है सीने और गले में उत्तेजना होती है और वह सबल और पुष्ट बनते हैं।

इस प्रकार यह स्वर शरीर के हृदयादिक मुख्य अंगों को संचालित और और उत्तेजित तथा रुधिर को शुद्ध कर समस्त विकारों को दूर कर देते हैं। जब सब अंग और इन्द्रियां स्वस्थ रुधिर के तीव्र संचार के कारण अपना अपना काम स्वाभाविक रूप से करने लग जाती हैं, तब वह केवल वाह्य रूप से रूप स्वरूप आकार-प्रकार तथा बल में ही उन्नति को प्राप्त नहीं होती, बल्कि आन्तरिक गुणोंमें सहिष्णुता तथा रोग नाशक शक्ति में भी उन्नति करती है, और साथ २ आध्यात्मिक विषय में भी प्रवृत्ति होती है।

वेद का उपदेश।

अप दुष्कृता न्यजुष्टान्यारे।

दुराचार और दुर्विचार दूर रक्खो।

× × × ×

भर्गोयशः सह ओजो वयो बलम्।

तेज यश सहन शक्ति शारीरिक शक्ति दीर्घ आयु तथा आत्मिक बल प्राप्त करने चाहिये।

× × × ×

मधुमन्मे निष्क्रमणं मधुमन्मे परायणं।

मेरे चाल चलन और मेरे बर्ताव मीठे रहें।

× × × ×

माश्रुतेन विराधिषि।

ज्ञान के साथ कभी विरोध न करो।

× × × ×

प्रचेता दुरिता न्यजुष्टान्यारे।

ज्ञानी दुर्गति और पाप से बचावे।

× × × ×

रमन्ता पुण्या लक्ष्मीर्या पपीस्ता अनीनशम्

पुण्य की कमाई मेरे घर की शोभा बढ़ावे, पाप की कमाई को मैं नष्ट कर देता हूं।

× × × ×

स्वस्ति पन्थामनुचरेम।

हम कल्याण मार्ग के पथिक बनें।

× × × ÷

आरोह तमसो ज्योतिः।

अन्धकार से निकल कर प्रकाश की ओर आ।

× × × ×

हेत्या हेतिरसि।

हे मनुष्य तू शास्त्रों का शास्त्र है।

× × × ×

प्रति सरोऽसि प्रत्यभिचरणोऽसि।

तू आगे बढ़ने वाला है और तू दुष्टता पर हमला करने वाला है।

—

बाइबिल की वाणी ।

[भजन संहित प्रकरण में ईश्वर प्रार्थना ।]

हे प्रभु ! तू अपने बचनके अनुसार मुझे सँभाल, मुझ को झूठ के मार्ग से दूर कर और करुणा करके अपनी व्यवस्था मुझे दे मैंने सचाई का मार्ग चुन लिया है। तेरे नियमों की ओर मैं चित्त लगाये रहता हूं मैं तेरी चेतावनियों में लवलीन हूँ।

११६। २८, ३१।

मुझे मनुष्यों के अंधेर से छुड़ाले। तब मैं तेरे उपदेशों को मानूंगा। अपने दास पर अपने मुख का प्रकाश चमका और अपनी विधियाँ मुझे सिखा। मेरी आंखों से जल की धारा बहती रहती है कि लोग तेरी व्यवस्था को नहीं मानते।

११६। १३४, ३६।

उत्तम हो कि मेरा चाल चलन तेरी आज्ञाओं के मानने के लिए दृढ़ हो जाए। जब मैं तेरी सब आज्ञाओं की ओर से चित्त लगाये रहूँगा, तब मेरी आशा न टूटेगी। जब मैं तेरे धर्म मय नियमों को सीखूंगा, तब तेरा धन्यवाद सीधे मन से करूँगा।

११६। ५, ७।

मैं सारे मन से तेरी खोज में लगा हूं मुझे अपनी आज्ञाओं की बाट से भटकने न दे। मैंने तेरे बचन को अपने हृदय में रख छोड़ा है कि तेरे विरुद्ध पाप न करूँ।

११६। ६, ११।

यदि मैंने कंगालों की इच्छा पूरी न की हो या मेरे कारण विधवा की आँख कभी रह गई हो। या मैंने अपना टुकड़ा अकेला खाया हो। यदि मैंने किसी को वस्त्र बिना मरते हुए या किसी दरिद्र को बिना ओंढे देखा हो और उसको अपनी भेड़ों की ऊन के कपड़े न दिये हो ······· तो मेरी बांह बखौड़े से उखड़कर गिर पड़ें और मेरी भुजा की हड्डी टूट जाऐं।

३१। १६, २२।

कुरान का आदेश !

[सब धर्मों में अवतार होते हैं।]

इन लोगों से कहो कि जो किताब (धर्म पुस्तक) हम पर नाजिल हुई और जो किताब तुम पर नाजिल हुई हम तो सभी को मानते हैं। हमारा खुदा और तुम्हारा खुदा एक ही है।

—सूरे अन्कूवत

× × × ×

कोई कोम ऐसी नहीं है जिसके पैगम्बर न हुआ हो।

—सूरे फातिर

× × × ×

ऐ पैगम्बर ! तुम तो सिर्फ खबरदार कर देने वाले हो। हर कौम में पैगम्बर मौजूद हैं।

—सूरे रअद

× × × ×

जब हमने कोई पैगम्बर भेजा तो उसको उसी की कौम की जवान में बात चीत करता हुआ भेजा है ताकि वह उनको अच्छी तरह समझा सके।

—सूरे इब्राहीम

× × × ÷

हम हर एक उम्मत में कोई न कोई पैगम्बर भेजते हैं।

—सूरे नहल

× × × ×

हमने हर एक उम्मत के लिए इबादव के तरीके करार दिये हैं कि वह उन पर चलते हैं।

—सूरे हज्ज

× × × ×

लोगों ने आपस में अख्तिलाफ करके दीन के टुकड़े टुकड़े कर डाले लेकिन सब आखिरकार हमारी ही तरफ को लौटकर आने वाले हैं।

—सूरे अम्बिया

तेरी खोज

श्री आर... [illegible]

मैंने तेरा पता न पाया !

आतुर, लोचन लिए पन्थ में बैठा हूँ चिर साधक तेरा !
तिमिराच्छन्न हुआ यह जीवन छाया है अवसाद घनेरा !
है तुझसे मिलने की आशा, तेरे दर्शन की अभिलाषा—
धू धू ज्वाल हृदय में जलती, जी मेरा अब है अकुलाया !
मैंने तेरा पता न पाया !

रे क्षण—भर भी पाजाता मैं तेरा प्यार विकल जीवन में !
रह न सकेगी कंचन काया वसुधा के विस्तृत अंचल में !
विह्वलता है बढ़ती जाती, नीर विन्दु आंखें बरसातीं—
जर्जर तन, है दुख—मय जीवन, मैं तो जगती से उकताया !
मैंने तेरा पता न पाया !

हाहाकार विश्व में छाया तूने यह संहार न देखा ?
मानव क्यों मानवता भूले लिया कभी इसका भी लेखा ?
जग कहता व्यापक कण कण में, तू व्यापक भी दानवपन में ?
निखिल विश्व में ढूंढा तुझको, तू जाकर है कहाँ समाया ?
मैंने तेरा पता न पाया !

दानव पन जगने अपनाया रे मुझको अब नहीं सुहाता !
मैं तो विह्वल हूं जगती में चैन नहीं कुछ भी ले पाता !
सहता हूँ अब भी आघातें, बीत चुकी कितनी ही रातें—
गिन गिन तारे नील गगन के आंखों से था नीर बहाया !
मैंने तेरा पता न पाया !